ज्ञान तत्व अंक 175

(क) लेख, जातिवाद और साम्प्रदायिकता, भ्रान्ति या यथार्थ।

(ख) लेख, आर्थिक मंदी, समस्या या समाधान।

(ग) भारतीय संस्कृति और पश्चिम की संस्कृति में क्या अंतर है।

(घ) सत्यदेव गुप्त सत्य का संघ और इस्लाम संबंधी प्रश्न और उत्तर ।

(च) बालकृष्ण पिल्लै 25 दिसम्बर के समाज अर्पण की प्रशंसा ।

(छ) श्री कुदंन लाल कुशवाहा द्वारा मेरी प्रशंसा और चाणक्य की उत्तर ।

(ज) ईश्वर दयाल जी द्वारा धर्म अध्यात्म पर प्रश्न और उत्तर ।

## (क) जातिवाद और साम्प्रदायिकता, भ्रान्ति या यथार्थ

अब तो यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि भारतीय राजनीति पूरी तरह ही अवसरवाद पर टिकी हुई है । वामपंथी दल ग्रामीण गरीब श्रमजीवी के नाम पर आवाज उठाने का नाटक करते है किन्तु कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि रोकने के लिये वही लोग सबसे आगे खडे दिखाई देते है। भारतीय जनता पार्टी सत्ता मे होती है तो गरीब ग्रामीण श्रमजीवी के पक्ष मे कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि करती है और विपक्ष मे होते ही उसका विरोध शुरू कर देती है। कांग्रेस पार्टी जब विपक्ष मे होती है तब गांवो को अधिक से अधिक अधिकार देने की बात करती है किन्तु सत्ता मे आते ही उस बात को भूल कर अन्य मामलो मे उलझ जाती है। अवसर वादिता लगातार बढ रही है । तीसरा मोर्चा तो पूरी तरह घोषित रूप से अवसरवादियो का है ही किन्तु कांग्रेस और भाजपा भी अवसरवादी कूटनीति का लाभदायक अवसर कभी नही छोडना चाहते।

जातिवाद और साम्प्रदायिकता ऐसी अवसरवादी राजनीति का आधार बने हुए है । दोनो बिल्कुल ही अलग मुददे है जिनमे दूर दूर तक समानता खोजना बेकार की ही कसरत है। साम्प्रदायिकता मुख्य रूप से इस्लाम, इसाइयत और हिन्दुत्व के बीच संख्या बल वृद्धि की प्रतिस्पर्धा है तो जातिवाद हिन्दू धर्मावलम्बियो के बीच स्वतंत्रता के पूर्व लाभ उठा रहे सवर्णो और स्वतंत्रता के बाद उस लाभ की स्थिति मे हिस्सा बंटाने के लिये प्रयत्नशील अवर्णो के बीच की प्रतिस्पर्धा है। भारतीय राजनीति मे वर्तमान मे चार ध्रुव माने जाते है 1. कांग्रेस 2. संघ परिवार 3. वामपंथी 4.ढुलमुल। इस चुनाव में वामपंथी भी दुलमुलों की श्रेणी मे आते जा रहे है और उन्होने अपनी स्वतंत्र नीति से हार मानकर दुलमुलों से समझौता कर लिया है। इसलिये जातिवाद और साम्प्रदायिकता पर चर्चा करते समय तीन ही ध्रुव दिखाई पड रहे है।

हम पहले साम्प्रदायिकता की समीक्षा करे तो पाते है कि कांग्रेस पार्टी का प्रत्येक सदस्य आन्तरिक चर्चा मे इस्लाम और इसाइयत के पूरी तरह विरूद्ध है। यहॉ तक कि वे संघ परिवार की अपेक्षा भी अधिक विरूद्ध रहते है किन्तु व्यक्तिगत स्थिति से बाहर निकलते ही वे पूरी तरह इस्लाम और इसाइयत के बचाव मे आ जाते है। कांग्रेस के लोग हर समय तैयार रहते है कि मुसलमान इसाई चाहे जितनी भी साम्प्रदायिक बाते करे तो उनका सब पूरी तरह माफ है किन्तु यदि हिन्दु ने आंशिक बात भी की तो ये साम्प्रदायिकता का तुरंत लेबल लगा देते है। दुलमुल लोगो का तीसरा मोर्चा तो इस मामले मे हमेशा तैयार बैठा ही रहता है। अब वामपंथियों के साथ जुड जाने से उनकी मुस्लिम इसाई तुष्टीकरण की एक जुटता और साफ हो गई है। वैसे तो साम्प्रदायिकता की नीव उसी दिन पड गई थी जब हिन्दु धर्म से असंतुष्ट अम्बेडकर ने नेहरू को आगे करके हिन्दुओं की छाती मे हिन्दु कोड बिल का कीला ठोक दिया था। यह एक आश्चर्य ही माना जायगा कि स्वतंत्रता के बाद हिन्दु समाज सुधारो के लिये सर्वाधिक चिन्तित दिखने वाले दोनो महापुरूषो के मन मे उस समय हिन्दू प्रेम का प्रतिशत कितना था और धृणा का कितना यह जग जाहिर है। वह कीला आज भी हिन्दुओ को दर्द देता रहता है। यह दर्द ही संघ परिवार को अपने साम्प्रदायिक सोच को आगे बढाने मे खाद पानी का काम करता है। कांग्रेस पार्टी अपने अन्य साथियों के साथ मिलकर मुस्लिम तुष्टीकरण के लिये इस खूटा को गाडे रखना आवश्यक समझती है।

हिन्दू विरोधी तुष्टीकरण का लाभ उठाकर संघ परिवार ने हमेशा अपने को मजबूत किया। संघ परिवार ने खुले आम स्वय को हिन्दुओ का संरक्षक घोषित कर दिया और लगातार हिन्दुओ के मन मे साम्प्रदायिक बीज मजबूत से मजबूत कर रही है। मेरा मत है कि हिन्दू साम्प्रदायिक हो ही नही सकता चाहे वह कांग्रेसी ही क्यो न हो । वह ढुलमुल लोगो के साथ मिलकर भी भले ही तुष्टीकरण का नाटक कर ले किन्तु वह वास्तव मे तुष्टीकरण का समर्थक नही होता। हिन्दू तभी साम्प्रदायिक बनता है जब वह या तो अपना धर्म बदल लें या संघ परिवार के साथ जुड जावे या वामपंथियो के साथ। हिन्दू इस्लाम की आतंकवादी या इसाइयत की मीठी धूस की प्रतिकिया मे ही संघ की तरफ झुकता है अन्यथा वह एकमात्र दुनिया का ऐसा प्राणी है जो धार्मिक मामलो मे नुकसान उठा सकता है किन्तु नुकसान कर नही सकता।

संघ परिवार को दूसरा लाभ यह भी है कि कांग्रेस या तीसरा मोर्चा जिस तुष्टीकरण को आधार बनाकर चल रहे है उसके दोनो मूल धटक इस्लाम और इसाइयत विदेशी है और आकान्ता रहे है। संघ परिवार को राष्ट्रवाद को

उभारने मे भी सहायता मिलती है। यही कारण है कि संघ परिवार हिन्दू साम्प्रदायिकता को उभारने मे लगातार आगे बढ रहा है।

जातिवाद हिन्दुओ का आन्तरिक मामला है। जाति व्यवस्था तथा वर्ण व्यवस्था जब तक कर्म पर आधारित थी तब तक कोई विकृति नही आई थी किन्तु जब से वह व्यवस्था जन्म पर आई तब से ही धूर्त सवर्णो ने इस व्यवस्था का लाभ उठाया और इस विकृति को इस सीमा तक मजबूत किया कि वह विकृति ही व्यवस्था के रूप मे बदल गई। कुछ सवर्णो ने इस विकृत व्यवस्था को फिर से ठीक करने की कोशिश की तो कुछ धूर्त अवर्णो ने इस विकृति का लाभ उठाने के उदेश्य से अवर्णो को संगठित करना शुरू किया। ऐसे अवर्ण संगठन के मजबूत होने से धूर्त सवर्णो के एक पक्षीय लाभ मे बंटवारा हुआ और इस बंटवारे का कुछ प्रतिशत धूर्त अवर्णो के हिस्से मे भी चला गया। गांधी जी भी ऐसे जातीय ध्रुवीकरण के विरूद्ध थे और लोहिया जी भी किन्तु नेहरू और अम्बेडकर ने इतनी तीव्रता दिखाई कि न गांधी रोक सके न लोहिया। गांधी और लोहिया हमेशा इस विचार के पक्षधर रहे कि यदि श्रम की मांग और मूल्य बढ जावे तो अवर्णो का जीवन स्तर भी अपने आप सुधर जायेगा और जातिवाद भी कम हो जायगा। किन्तु न अम्बेडकर ने गांधी लोहिया की सुनी और न नेहरू ने । इस दोनेा ने मिलकर हिन्दुओ को छाती पर आरक्षण की एक और कील ठोक दी और बता दिया कि इस कील का बांया भाग सर्वण कहा जायगा और दाया अवर्ण। संध परिवार इस कील को निकालना चाहता है क्योकि यह कील हिन्दुओ को ही विभाजित करती है। कांग्रेस पार्टी और तीसरा ढुलमुल मोर्चा इस कील को मजबूती से गाडे रखना चाहता है क्योकि यह कील ही संध को रोकने मे सहायक हो सकती है। मुझे तो आश्चर्य होता है कि कुछ लोग लोहिया तक का नाम लेकर ऐसे जातीय आरक्षण का समर्थन करते रहते है जबकि सच्चाई यह है कि लोहिया और गांधी खुले रूप से मशीनीकरण के विरूध श्रम की मांग और मूल्य वृद्धि के पक्षधर थे। स्वतंत्रता के पूर्व सामाजिक आरक्षण का लाभ मुठ्ठी भर धूर्त सवर्णो ने उठाकर गरीब ग्रामीण श्रमजीवी वर्ग का शोषण किया और स्वतंत्रता के बाद कुछ धूर्त अवर्ण भी शोषण मे शामिल हो गये। गरीब ग्रामीण श्रमजीवी उस समय भी ठगा गया था और आज भी ठगा जा रहा है यधपि पहले की तुलना मे जातीय अनुपात थोडा सा बदल भले गया हो।

सवोच्च न्यायालय के न्यायाधीश मार्कन्डेय जी काठजू ने जाति प्रथा और जातिवाद विषय पर लेख लिखे है। उन्होने लिखा कि प्रौधोगिकी के विस्तार ने सवर्णो की जातीय संकीर्णता को बहुत कम किया है जबकि वोटवादी अवर्ण जातीय संगठन बनाने की प्रवृत्ति धीरे धीरे जातिवाद को प्रोत्साहित कर रही है । मै उनके विश्लेषण से पूरी तरह सहमत हूँ। आज से पचपन वर्ष पूर्व लोहिया जी के विचारो से प्रभावित होकर मैने जातिवाद के खिलाफ विद्रोह किया था और ब्रहम्णो के दबाव के कारण इसाईयो के साथ और बाद मे आर्य समाज के साथ जुडा । पंचान्नवे प्रतिशत हरिजन आदीवासी मुझे आज तक पूरा सम्मान देते है किन्तु शेष दो तीन प्रतिशत वे हरिजन आदिवासी दलित पिछडे जो आरक्षण का लाभ उठाकर प्रगति कर चुके है, मुझसे चिढते है क्योकि मै दलित सेना आदिवासी मंच का सदस्य नही हूँ। मेरा सबसे अधिक विरोध इसलिये होता है कि मै वर्ग संधर्ष के विरूध वर्ग समन्वय का पक्षधर हूँ। जो सवर्ण जातियॉ जातिवाद और जाति व्यवस्था की पक्षधर थी वे तो इस वर्ग समन्वय की पक्षधर है तथा जो आदिवासी हरिजन आज तक पिछडे हुए है वे भी वर्ग समन्वय के विरूद्ध नही है किन्तु मुठठी भर पेशेवर सवर्ण नेता या हरिजन आदिवासी दलित पिछडे जो स्वतत्रता के बाद लाभान्वित होकर शक्तिशाली हो चुके है वे वर्ग समन्वय के धोर विरोधी है क्योकि जिनके वोट बैंक की कीमत पर उन्हे लाभ मिला है वह वोट बैंक कमजोर होना उनके लिये धातक होगा। मै यह महसूस करता हूँ कि जातीय मामलो मे समानता का व्यवहार करना सवर्णो का कर्तव्य तो है किन्तु अवर्णो का अधिकार नही। गांधी और लोहिया इसे सवर्णो के कर्तव्य तक सीमित रखना चाहते थे। किन्तु अम्बेडकर और नेहरू ने इसे अधिकार बनाने की जिद की । गांधी जी चले गये और लोहिया जी अकेले पड गये। परिणाम स्वरूप संधर्ष समर्थक लगातार अधिकार प्रणाली को मजबूत करते चले गये। आज तो हालत यह हो गई है कि अधिकार छीनने और अधिकार बचाने की प्रतिस्पर्धा मे आम भारतीय पिस रहा है। ये छीनने और बचाने वाले अति अल्प संख्या मे होते हुए भी सम्पूर्ण समाज को जातिवाद और सम्प्रदायिकता के नाम पर अशांत किये रहते है।

औसत हिन्दू का यह संस्कार होता है कि वह धृणा तो कर सकता है किन्तु आकमण नही कर सकता। वह त्याग सकता है पर छीन नही सकता। वह स्पष्ट कह सकता है किन्तु दुहरा व्यवहार नही कर सकता। औसत हिन्दू का यह संस्कार आसानी से नही बदलता। किन्तु वही हिन्दु जब मुसलमान साम्यवादी संध परिवार वाला या दलित बन जाता है तो उसके संस्कार बिल्कुल विपरीत हो जाते है। वह अपनो से प्रेम और दूसरो से हिंसा का मार्ग पकड लेता है । वह न्याय की जगह अपनत्व तथा त्याग की जगह अधिकारो की छोटा झपटी पर विश्वास करने लगता है। मेरे विचार मे यह मार्ग धातक है।

यदि हम धार्मिक टकराव और जातीय टकराव पर अलग अलग विचार करें तो सवर्णो द्वारा स्वतंत्रता के पूर्व अवर्णो पर अत्याचार और शोषण स्वय सिद्ध है। उसी तरह मुसलमानो का हिन्दुओ पर अत्याचार और शोषण भी प्रमाणित ही है। यदि स्वतंत्रता के पूर्व के अत्याचारो की स्वतत्रता के बाद आंशिक भरपाई करनी है तो आरक्षण भी जारी रखना उचित है और बनारस के विश्वनाथ मंदिर को भी हिन्दुओ को सौपना चाहिये । यदि आप स्वतंत्रता पूर्व के पुराने टकरावो को यही भूलकर नयी संहिता मे समानता से जीना चाहते है तो दोनो दिशाओ मे भूलना चाहिये। वामपंथी समाजवादी संगठित दलित आदिवासी पिछडे सवर्ण हिन्दुओ को स्वतंत्रता के पूर्व के सारे साम्प्रदायिक अत्याचार भूलने की सलाह तो दे रहे है किन्तु स्वय जातीय अत्याचारों को भूलने के विरूध सबको लाभचंद भी करना आवश्यक मानते है। दूसरी और आर एस एस विश्व हिन्दु परिषद शिवसेना आदि जातीय अत्याचार तो भूलने की बात करते है किन्तु धार्मिक अत्याचारो को भूलने के विरूध हिन्दुओ को संगठित करते रहते है।

मेरा व्यक्तिगत रूप से मानना है कि '' साम्प्रदायिकता और जातीय भेदभाव'' सामाजिक शान्ति के दो बडे शत्रु है। हमें चाहिये कि हम तत्काल पुराने इतिहास को यही रोककर ऐसी संहिता लागू कर दे जो भविष्य मे पूरी तरह समानता की गारटी दे। बाबरी मस्जिद को भी मस्जिद मान ले तथा आरक्षण जैसे प्रावधान भी हटा दें। बदले मे हम समान नागरिक संहिता लागू कर दे तो हिन्दुओ को राहत संभव है तथा श्रम की मांग श्रम का मूल्य बढ जाने दे तो हरिजन आदिवासी पिछडो की कुछ भरपाई संभव है। जातीय भेदभाव पर रोकथाम के लिये यदि एक प्रावधान हो जाय कि जो व्यवसाय सवर्ण नही कर सकते उनके उनके मूल्य बहुत अधिक बढा दिये जावे तो जीवन स्तर भी सुधर जायगा और जातिवाद भी कम हो जायगा। किन्तु कोई भी नेता कभी भी गांधाी लोहिया के इस मार्ग पर चलना ही नही चाहता क्योकि इससे तो उसकी धर्म जाति के नाम पर चलने वाली दुकान दारी ही बन्द हो जायगी। फिर भी मेरी आप सबको सलाह है कि आप वर्ग संघर्ष के स्थान पर वर्ग समन्वय पर सोचना शुरू करें।

## (ख) आर्थिक मंदी, समस्या या समाधान

पूरी दुनिया मे आर्थिक मंदी का कुहराम मचा हुआ है। सभी पूॅजीवादी देश भी इस मंदी से चिन्तित है तथा वामपंथी देश भी। चारो तरफ आपात्कालीन उपाय खोजे जा रहे है। नये नये पैकेज दिये जा रहे है। टैक्सो का सिस्टम भी बदला जा रहा है। भारत भी इस दिशा मे सतर्क कदम उठाने मे लगा हुआ है।

मैने भी आर्थिक विश्लेषक के नाते समझना शुरू किया । कई नामी समाजशास्त्रियो से चर्चा की कि आर्थिक मंदी क्या है तो सबका उत्तर था कि अर्थिक मंदी मे सामान्य नागरिक की कय शक्ति धट जाती है। मैने भारत मे इस कय शक्ति पर विचार किया तो मुझे तो न आम आदमी की परिभाषा समझ मे आई न उस पर पडने वाला प्रभाव। मुझे तो कोई भी अर्थ शास्त्री यह '' आम आदमी और उस पर प्रभाव की'' चर्चा के स्थान पर आयात निर्यात , सेन्सेक्स का गिरना, मुद्रा स्फीति का उतार चढाव , विकास दर आदि अनेक जालो मे उलझाने का उपक्रम करता रहा।

आर्थिक मंदी का पहला असर दिखा कि पूरे विश्व मे डीजल पेट्रोल की कीमत कुछ महिनो मे ही एक चौथाई रह गई है। प्रश्न उठता है कि क्या पूरी दुनिया के आम नागरिको की कय शक्ति एकाएक इतनी कम हो गई कि डीजल पेटोल की मांग नही रही और मूल्य कम हो गये ? जब एकाएक इनका उत्पादन नही बढा ,खपत नही धटी, तो मूल्यो मे इतना अन्तर कहा से आया। अमेरिका के कुछ बैको मे लोगो का जमा धन डूब गया, दुनिया के कुछ और बैको पर खतरा आया, तो पहला तात्कालिक और गंभीर प्रभाव डीजल पेट्रोल पर ही क्यो पडा? भारत सरकार ने भी अपनी अर्थ व्यवस्था के संकट को महसूस करते हुए तथा परिस्थितियॉ विपरित होते हुए भी पहले कदम के रूप मे डीजल पेट्रोल मे मूल्य पचीस प्रतिशत कम कर दिये। भारत मे आर्थिक मंदी के कारण किन आम नागरिको की कय शक्ति धटने का खतरा था जिनको राहत देने के लिये इनके मूल्य कम किये गये? यदि डीजल पेट्रोल के दाम नही धटते तो इनकी खपत कम हो जाती। इससे क्या नुकसान संभावित था? मुझे तो कुछ समझ नही आया कि वह कौन सा पडयंत्र था जिसके फूटते ही डीजल पेट्रोल व्यवस्था के बीमार होने का खतरा पैदा हो गया जिससे आम आदमी संकट मे फंस सकता था। जिसके कारण भारत सरकार को यह सकियता दिखानी पडी।

आर्थिक मंदी का एक दूसरा तात्कालिक प्रभाव दिखा कि सेन्सेक्स तेजी से नीचे आ गया। आज से साढे चार वर्ष पूर्व जब मनमोहन सिह जी प्रधान मंत्री बने थे उस दिन भारत मे सेन्सेक्स 6300 था जो तीन दिन बाद धटकर 5000 होगया था। चार वर्षो मे ही सेन्सेक्स पांच हजार से बढकर इक्कीस हजार हो गया और अभी के छ महिनो के बाद सेन्सेक्स इक्कीस से धटकर ग्यारह हजार रह गया। मुझे समझ नही आ रहा कि आर्थिक मंदी क्या है? यदि साढे चार वर्षो मे सेन्सेक्स पांच हजार से धटते बढते अन्त मे ग्यारह हजार पर है तो यह मन्दा हुआ कि तेज। यदि हम नौ प्रतिशत भी विकास दर मान ले तब भी साढे चार वर्षो मे ग्यारह हजार से कम ही होता है। फिर इतनी चिन्ता क्यो? यदि सेन्सेक्स पांच से बढकर इक्कीस हुआ तब लाभ किनको हुआ और इक्कीस से धटकर ग्यारह हुआ तो हानि किनको हुई? क्या प्रभाव पडा सामान्य जन पर ?

विकास दर के लिये भी बहुत चिनित्त है अर्थ शास्त्री। मुझे तो पता ही नही चलता कि इसके बढने धटने से किन लोगो को लाभ हानि होती है। मैने सुन रखा है कि विकास दर गरीब वर्ग की करीब एक प्रतिशत के आस पास और सम्पन्नो की सत्रह प्रतिशत है जिसका औसत नौ मानते है। अब यह विकास दर एक और तेरह होने की उम्मीद है जिसका औसत सात हो जायगा। हो सकता है कि यह कुछ और धट जावे किन्तु गरीब श्रमजीवी की विकास दर मे नगण्य ही कमी आयगी और वह एक के आस पास ही रहने की उम्मीद है।

एक चौथा शब्द है आम आदमी। सारा पडयंत्र इसी शब्द मे छिपा है सरकार ने गरीबी रेखा का एक मानक बना रखा है कि ग्रामीण क्षेत्र का व्यक्ति तेरह रूपया प्रतिदिन और शहरी क्षेत्र का उन्नीस रूपया प्रतिदिन से कम हो तो गरीब माना जायगा। ऐसे गरीबो की संख्या सरकारी रेकार्ड मे करीब बीस करोड के आस पास है। अभी कुछ माह पूर्व अर्जुन सेन गुप्त आयेाग बना जिसने रिपोर्ट दी कि भारत मे ऐसे गरीबो की संख्या करीब अस्सी करोड है जो बीस रूपया प्रतिदिन से भी कम पर गुजर बसर करते है। समझ मे नही आता कि तेरह रूपया का एक मानक रहते हुए एक नया मानक बीस रूपया मानकर सर्वेक्षण की जरूरत क्या थी ? शायद आंकडे बढाकर दिखाना उदेश्य रहा हो । अब हम इन बीस रूपया प्रतिदिन मे कम वालो को आम आदमी मान ले और इससे ज्यादा वालो को खास तो प्रश्न उठता है कि किसकी कय शक्ति कम हुई? ये बीस रूपया से कम वाले तो न डीजल पेट्रोल पर ज्यादा

निर्भर है न सेन्सेक्स पर । ये निर्भर है अपने शारीरिक श्रम पर। पहले भी उपेक्षित था और आज भी है। फिर इन पर क्या प्रभाव पडने वाला है?

आर्थिक मंदी का सर्वाधिक हल्ला सुनाई देता है जमीन और मकानो की मंदी पर । जमीनो के मूल्य कम हो रहे है। मकानो के ग्रहक नही मिल रहे । मुझे समझ मे नही आता कि यह मूल्य ह्रास समस्या है या समाधान। जमीनो के दाम धट रहे है तो समाज के लिये संतोष का विषय है कि चिन्ता का ? मकान खरीदने वालो की राहत के लिये व्याज सस्ता किया जा रहा है । जब मकानों का दाम धट रहा है तो फिर खरीदने वालो को राहत क्यो ? मुझे तो आज तक समझ मे नही आया कि आर्थिक मंदी का अस्सी करोड लोगो पर कैसे बुरा प्रभाव पड रहा है।

बेरोजगारी का भी खुब हल्ला हो रहा है । मुझे तो अब तक अस्सी करोड श्रमजीवियों या गरीबो पर बेरोजगारी का कोई खतरा नही दिखा। जो शेष बीस करोड बीस रूपया से अधिक वाले लोग है उनकी वुद्धि का मूल्य अवश्य कम हुआ है। ऐसे लोगो मे कुछ बेरोजगार भी हो सकते है ।यदि ऐसे कुछ लोगो के रोजगार धट जावे तो चिन्ता की बात क्या है? हजारो रूपया रोज कमाने वाले कुछ दिन कम कमा लेगे या धर बैठ जायंगे तो कोई बडी बात नही है। रोजगार मे जो भी कमी हो रही है या हो सकती है वह सब वुद्धिजीवी शहरी सम्पन्न रोजगारो मे है और वह भी पिछले पांच वर्षो मे बेतहाशा बढे रोजगार से है न कि श्रमजीवी गरीब ग्रामीण के रोजगार पर।

आर्थिक मंदी का अर्थ आम नागरिको की इच्छा शक्ति मे कमी है नकि वस्तुओ की मांग मे कमी। यदि किन्ही वस्तुओ के मूल्य अपेक्षा से बहुत अधिक बढ गये हो तथा आम लोगो को भविष्य मे मूल्य कम होने की संभावना हो तो वस्तुओ की मांग भी कम हो जाती है ओर मूल्य भी। किन्तु लोगो की कय शक्ति कोई ऐसी चीज नही है जो एकाएक पूरे विश्व मे कम हो जावे। मेरे अपने परिवार मे एक कार खरीदने की तैयारी थी तथा एक जमीन भी खरीदने का विचार था। एकाएक जब आर्थिक मंदी का प्रचार हुआ तो हमारे परिवार वालो ने कार खरीदने का विचार कुछ महिनो के लिये स्थगित कर दिया इसके विपरीत ग्राहक खोजकर जमीन बेच दी जबकि पहले खरीदने की योजना थी इस परिवर्तन का कय शक्ति से कोई सम्बन्ध नही था । सम्बन्ध सिर्फ यही था कि पहले खरीदी हुई वस्तु के मूल्य बैक व्याज की अपेक्षा अधिक बढ जाने की संभावना थी जो पलटकर धट जाने की संभावना मे बदल गई। ऐसी संभावना मे सरकारों की क्यो भूमिका होती है। यदि यह बजार का खेल है तो इस खेल से बाजार का ही लाभ या हानि होती है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव इस खेल मे शामिल खिलाडियों पर होता है, खेल से बाहर रहने वालो पर नही। सरकारे यदि इस खेल से लाभ उठाते समय मूक दर्शक थी तो अब इतनी चिन्तित किनके लिये है। मैने आर्थिक मंदी के हल्ले के सात दिन बाद ही सुना कि किसी उधोगपति की सम्पत्ति हजार करोड कम हो गई तो किसी की दो हजार करोड । इनकी पूॅजी इसी तरह बढी भी थी। पता नही सरकार क्यो इतनी चिन्तित हुई कि उसने पैकेज पर पैकेज देने शुरू कर दिये। यदि बाजार मे डीजल पेट्रोल की मांग और मूल्य धट जावे, कार और स्कूटर सस्ते हो जावे वुद्धिजीवियो की मांग और मूल्य कम हो जावे , जमीन सस्ती हो जावें तो यह समाज के श्रमजीवी ग्रामीण गरीब के लिये समस्या का विस्तार है या समाधान। यदि किसी साधारण व्यक्ति की कय शक्ति से बाहर रहने वाला मकान उसकी शक्ति के अन्दर आ जावे तो ऐसी आर्थिक मंदी तो आगे भी जारी रहनी चाहिये भले ही ऐसी मंदी से कुछ बडे बडे लोगो की कय शक्ति धट रही हो या उनके कल कारखाने बन्द हो रहे हो या ऐसी बन्दी से कुछ लोग बेरोजगार हो रहे हों।

हो सकता है कि दुनिया के अन्य देशो पर ऐसी मंदी का कोई बुरा प्रभाव पडा हो या या पडने की उम्मीद हो किन्तु भारत मे तो इससे कुल मिलाकर लाभ ही हुआ है। जब भूमि भवन के मूल्य कम हो रहे हो तब खरीदने वालो का सस्ते व्याज पर कर्ज दिया जावे और जब भूमि भवन मंहगे हो तब अधिक व्याज पर कर्ज दिया जावे ऐसी सरकारी नीतियॉ बिल्कुल स्पष्ट करती है कि सरकारो को श्रमजीवी गरीब ग्रमीण की कोई चिन्ता नही। इसके विपरीत सरकारें शहरी पूॅजीपति वुद्धिजीवियो के लिये अधिक चिन्तित रहती है । दुनिया के अन्य देशो का तो यह स्वभाव है ही क्योकि उनकी तो पूरी की पूरी अर्थ व्यवस्था ही इन्ही के सहारे चलती है किन्तु भारत का हाल तो वैसा नही। इसलिये मेरा आग्रह है कि दुनिया मे आई व्यापक मंदी का भारत की सरकार और जनता को स्वागत करना चाहिये । बहुत प्रतीक्षा के बाद तो ऐसा अवसर आया है। अब हाय तौबा करना ठीक नही।

इस समय पूरी दुनिया मे दो प्रकार का अर्थ व्यवस्थाएॅ है 1. राज्य नियंत्रित 2. राज्य संरक्षित। राज्य नियंत्रित व्यवस्था को समाजवाद या साम्य वाद कहा जाता है और राज्य संरक्षित को पूॅजीवाद। राज्य नियंत्रित व्यवस्था तो पूरी तरह असफल और अव्यावहारिक धोषित हो चुकी है। राज्य संरक्षित अर्थव्यवस्था बढ रही है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत अर्थ व्यवस्था को स्वतंत्र नही होने दिया जाता बल्कि तब तक आगे बढने की छूट दी जाती है जब तक पूॅजीवाद संकट मे न आ जावे। जब तक भूमि , भवन, सेन्सेक्स, मुद्रा का महत्व बडता रहा तब तक सरकार चुप रही और ज्योंही उसका प्रभाव धटना शुरू हुआ सरकारे सकिय हो गई। समाजवादी या साम्यवादी अर्थ व्यवस्था की तो अब छाती पीटने के अलावा कोई भूमिका बची नही है। पूरी दुनिया ने साम्यवाद को भी नकार दिया है और समाजवाद को भी। भारत मे अब भी अनेक ऐसे लोग है जो साम्यवाद समाजवाद की प्रतीक्षा मे बौद्धिक कसरत करते रहते है । ज्योंही पूॅजीवाद के दुष्परिणाम सामने आते है त्योही ये समाजवाद साम्यवादके समर्थन मे कलम कागज निकालकर सकिय हो जाते है । ऐसे लोगो की बात हम छोड भी दे तो हमे वर्तमान पूॅजीवाद का विकल्प तो तलाशना होगा ही। इस पूॅजीवादी व्यवस्था के सहारे तो हमारी अर्थ व्यवस्था ठीक से चल नही सकती। मेरे विचार मे तीन विकल्प हो सकते है। 1. अर्थ व्यवस्था पूरी तरह राज्य नियंत्रण मुक्त 2. एक स्वतंत्र अर्थ व्यवस्थ जो लोकतंत्र के अन्तर्गत न्याय पालिका कार्यपालिका और विधायिका के समान बराबर संवैधानिक अधिकार युक्त हो 3. विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था जिसमें प्रत्येक इकाई को सीमित मात्रा मे स्वतंत्र आर्थिक अधिकार हों। क्या हो यह भिन्न विषय है किन्तु कोई न कोई विकल्प हो अवश्य। इन मुददो पर विचार मंथन होना चाहिये।

# कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर

**(ग) प्रश्न**— पश्चिम की संस्कृति और भारत की संस्कृति मे मूल अन्तर क्या है ?

**उत्तर**— पश्चिम की संस्कृति के मूल मे रहा है व्यक्ति और पुरानी भारतीय संस्कृति के मूल मे समाज। पश्चिम में व्यक्ति को तब तक महत्व दिया जाता है जब तक वह समाज के लिये खतरनाक न हो जावे। भारत मे इससे ठीक विपरीत है। यहॉ समाज को तब तक महत्व दिया जाता है जब तक व्यक्ति पर अत्याचार न होने लगे । इसका अर्थ यह हुआ कि पश्चिम मे आवश्यकता से अधिक व्यक्ति स्वातंत्र है और हिन्दू संस्कृति मे आवश्यकता से भी कम व्यक्ति स्वातंत्र है। पश्चिम मे सामाजिक नियम कानून व्यक्ति समूह मिलकर बनाते है जबकि हमारी संस्कृ ितमे सामाजिक नियम कानून ऋषि मुनि विद्वान मिलकर बनाते है और हम उनका उसी प्रकार पालन करते है। यहि कारण है कि पश्चिम मानवाधिकार का प्रबल पक्षधर है और भारत मानवाधिकार को गौण समझता है।

वर्तमान समस्या यह है कि पश्चिम अपनी व्यक्तिवादी मानवाधिकार वादी सोच से भारतीय संस्कृति को प्रभावित कर रहा है। भारत मे आज जो कठोर सामाजिक अनुशासन से व्यक्ति को राहत मिली है वह पश्चिम की ही देन है । पश्चिम ने ही भारतीय जनमानस को कुछ मुक्ति दिलाई है। किन्तु साथ ही भारत मे अव्यवस्था बढने का मुख्य कारण भी पश्चिम ही है। भारत ने बिना पूर्व तैयारी के ही व्यक्ति स्वातंत्र और मानवाधिकार की नकल करनी शुरू कर दी। भारत मे अपराधियो को दण्डित करने की जितनी सशक्त व्यवस्था होनी चाहिये वह नही बनी और व्यवस्था बनने के पूर्व ही मानवाधिकार की नकल शुरू हो गई । पश्चिम के देशो मे एक लाख की आबादी पर न्यूनतम दो सौ चालीस पुलिस के लोग है। भारत मे यह राज्य स्वीकृत संख्या डेढ सौ है और वास्तविक एक सौ। पश्चिम मे पुलिस विभाग पर अस्सी प्रतिशत दायित्व अपराध नियंत्रण का है और बीस प्रतिशत अन्य समाज निर्माण का। भारत मे पुलिस पर इससे ठीक उल्टा दस प्रतिशत दायित्व ही अपराध नियंत्रण का है शेष नब्बे प्रतिशत समाज निर्माण का । हमारी व्यवस्था तो इतनी कमजोर है और आदर्श पश्चिम के मानवाधिकार की नकल करने का। मैं स्वय महसूस कर रहा हूॅ कि मेरा उत्तर उतना स्पष्ट नही बन पा रहा है जितनी सरल भाषा मे स्पष्ट होना चाहिये । भविष्य मे और प्रश्न होगे तब सुविधा होगी।

एक बात स्पष्ट है कि पश्चिम का अतिवादी व्यक्ति स्वातंत्र भी धातक है और हमारा अतिवादी मजबूत केन्द्रीकरण भी। बीच का मार्ग है प्रत्येक इकाई को इकाईगत स्वतंत्रता। व्यक्ति को व्यक्तिगत, परिवार को पारिवारिक, गांव को गांव सम्बन्धी, जिले को जिले सम्बन्धी , प्रदेश को प्रदेश संबंधी और देश को राष्ट्रीय स्तर की समस्याओ के सामधान के निर्णय मे अधिकतक स्वतंत्रता होनी चाहिये। कोई भी इकाई किसी अन्य इकाई की सीमाओ का अतिक्रमण न कर सके यह गारंटी देना विश्व व्यवस्था का दायित्व होना चाहिये। इस व्यवस्था से हठकर मानवाधिकार के उच्च आदर्शो की नकल करना धातक होगा जैसा कि अभी हो रहा है। मै तो इस मत का हूॅ कि पश्चिम का विकेन्द्रीकरण और भारत का केन्द्रीकरण से बीच का मार्ग ही ठीक रहेगा ऐसी संस्कृति को प्रोत्साहन दिया जाय।

**प्रश्न**— आप बार बार लिखते है कि महिला और पुरूष दो अलग अलग वर्ग न होकर व्यक्ति ही है जो व्यक्ति के रूप मे तो एक दुसरे के पूरक है किन्तु संगठन के रूप मे धातक । आप महिला आरक्षण विधेयक का भी समर्थन नही करते। कुछ दिनों पूर्व महिला सशक्तिकरण दिवस पर भी आपने जो भाषण दिया वह बिल्कुल अलग ही था। आप इस संबंध मे थोडा विस्तार से समझाइये।

**उत्तर**— चाहे महिला हो या पुरूष , दोनो या तो व्यक्ति होते है या परिवार। इसके बीच मे कोई तीसरा संगठन हो ही नही सकता। स्त्री और पुरूष एक दुसरे के पूरक है, विकल्प नही। परिवार मे स्त्री पुरूष के अभाव मे या पुरूष स्त्री के अभाव मे अपने वर्ग के साथ मिल कर अपनी पूर्ति नही कर सकता। स्त्री और पुरूष एक दूसरे के complement ही होते है supplement नही हो सकते। दोनो ऐसी दौड दौडते है जिसमे दोनो का एक एक पैर तो खुला है और एक एक मिलाकर बांधा है। इस तीन पैर की दौड मे न दो महिलाएॅ पैर बांध कर दौड सकती है न ही दो पुरूष। जब समाज व्यवस्था के लिये ऐसी शर्तो वाली तीन पैर की दौड अनिवार्य है तब महिला और पुरूष पृथक वर्ग हो कैसे सकते है, क्योकि वर्ग बनने के लिये तो आपका पैर खुला होना चाहिये।

जब पुरूष और महिला पृथक वर्ग है ही नही तो पृथक चिन्ता कैसी? कोई यदि ऐसी अलग चिन्ता करता है तो उसके पीछे कोई दूर का स्वार्थ छिपा है। महिला सशक्तिकरण दिवस पर आरक्षण समर्थक सभी पुरूष नेताओं का स्वर एक ही था कि आरक्षण हो। मैने दो सुझाव दिये कि या तो दस वर्ष के लिये सभी स्थान महिलाओ के लिये आरक्षित कर दिये जावे अथवा महिला आरक्षण मे एक नई शर्त जोडी जावे कि एक परिवार का एक ही व्यक्ति उक्त पद पर जा सकेगा। मेरे सुझाव पर सभी पुरूषो को भी आपत्ति थी और महिलाओ को भी। सच्चाई यह है कि कुछ सक्षम लोग सारे सामाजिक लाभ कम से कम परिवारो के बीच समेटना चाहते है। स्वतंत्रता के समय यदि पांच सौ बयालीस सांसदो मे पांच सौ परिवारो का प्रतिनिधित्व था तो अब करीब साढे तीन सौ का ही बचा है और महिला आरक्षण ढाई सौ मे ही समेट देगा। सभी नेता किसी न किसी आधार पर इसी तिकडम मे है कि उनके परिवार के सभी सदस्य लाभ के पद पर पहुॅच जावे और ऐसा पद पाने के लिये महिला आरक्षण आवश्यक है।

ऐसे आरक्षण की आवाज सक्षम और सुविधा प्राप्त पदो तक ही सीमित है। सम्पूर्ण भारत मे ऐसे आरक्षण का लाभ उठाने की क्षमता एक प्रतिशत से भी कम परिवारो की महिलाओ तक ही सीमित है। शेष निन्यान्नवे प्रतिशत को न कोई लाभ है न भूमिका। मैने पढा है कि लीची का पेड यदि नई भूमि पर लगाना है तो आवश्यक है कि किसी पुराने लगे हुए लीची के पेड की मिटटी खोदकर उस नई भूमि मे डाली जावे। आरक्षण का आंदोलन चलाने

वाली महिलाओ की यदि पृष्ठभूमि का आकलन करे तो अधिकांश के परिवार का कोई न कोई सदस्य इस दिशा मे उसे प्रेरित करने वाला है ही। इनमे अनेक तो ऐसी भी है जो अपने परिवार के पुरूष सदस्यो की प्रेरणा के अभाव मे अवैध पुरूषो से भी प्रेरणा लेने मे नही हिचकती। नारायण दत्त जी तिवारी ने अकेले ही कितनी महिलाओ को सक्षम बनाया यह सूची लम्बी हो सकती है। स्वाभाविक है कि ऐसी महिलाओ की आरक्षण की मांग मे अग्रणी भूमिका होगी ही और पीछे से समर्थन मे उनके पुरूष परिवार या मित्र खडे ही है । बाकी निन्यान्नवे प्रतिशत पुरूष या स्त्री इसमे कुछ कर सकते ही नही है । राष्टीय राजनीति मे शामिल होने को आतुर महिलाओ मे से कितने प्रतिशत सफल परिवार व्यवस्था चला रही है इसकी भी जॉच की जावे तो ऐसा प्रतिशत बहुत कम ही होगा। जो महिला परिवार नहीचला सकती वह देश चलाने के लिये बहुत व्याकुल है। ऐसी महिलाओ का प्रतिशत आधे से तो अधिक ही होगा कम नही। यदि यह तर्क दिया जाये कि पुरूषो मे भी महिलाओ की अपेक्षा ऐसे लोगो का प्रतिशत कम नही तो फिर महिलाओ पर ही आपत्ति क्यो? यह प्रश्न इस लिये गलत है कि क्या आपको किसी गलत काम की हिस्सेदारी मे विशेष प्रावधान चाहिये? सोचने का विषय है कि भष्टाचार या पारिवारिक मामलों मे चरित्र पतन का प्रतिशत राजनीति मे ही क्यो गिर रहा है और इसके समाधान मे आरक्षण की भूमिका क्या है?मुझे तो अब भी लगता है कि राजनीति से जुडे कुछ परिवार अपनी महिलाओ को आगे करके ऐसा वातावरण बनाने का प्रयास करते रहते है और हम लोग उसी हवा मे बह जाते है।

एक व्यक्ति ने मीटिग मे प्रश्न किया था कि आजकल महिलाएॅ बेची जाने लगी है। क्या यह मानवता के विरूद्ध नही है ? मैने बहुत विचार किया तो पता चला कि प्रश्नकर्ता हर मामले मे सिर्फ प्रश्न करना ही जानता है, उत्तर तो उसने न कभी सोचा न सोचने की जरूरत समझी । एक लडकी का पिता अपनी कम योग्य कम सुन्दर लडकी अधिक योग्य लडके या उसके परिवार को देता है और बदले मे धन भी देता है तो यह दहेज के नाम पर आपत्ति जनक है। एक लडकी का पिता अपनी अधिक योग्य लडकी कम योग्य को देकर धन लिया तो इसमे लडकी बेच दी गई। कल्पना करिये कि लडकियॉ समाज मे लडको से अधिक हो जावे तथा दहेज बढ जावे तब भी आपत्ति। मैने प्रश्न कर्ता से पूछा कि लडकी धर मे तो रहेगी नही। उसे देना तो है ही। यह निर्णय परिवारो के आपसी निर्णय पर ही क्यो न छोड दें कि धन देना है या लेना है। समाज को इस बीच मे क्यो हस्तक्षेप करना चाहिये? आज कल हर ऐरा गैरा नत्थू खैरा समाज सेवक दहेज और कन्या भ्रुण हत्या का विरोध करता मिल जायगा। जिसे समाज सेवा का करवग भी नही मालुम वह भी इन दो बातो पर अवश्य ही एक लम्बा भाषण दे देता है। यदि समाज मे कडाई से दहेज को रोक दिया जावे तो स्वाभाविक है कि गरीब धरो की लडकियॉ अमीर धरो की ओर आकर्षित होगी । तब अमीर धरो की लडकियो को और कहॉ भेजेगे। यदि भ्रुण हत्या का विरोध हो तो अलग बात है अन्यथा सिर्फ कन्या भूण हत्या तो अनावश्यक मुददा है । यदि लडकियो की समाज मे कुछ कमी होने से उनकी मांग और महत्व बढ जावे तथा दहेज समाप्त हो जावे तो आप इतने उतावले क्यो है? जब समाज मे लडकियो की मांग कम थी और पूर्ति ज्यादा तथा दहेज चरम पर था तब तो आप जैसे अनाडी समाज चिन्तको ने पता नहीक्या सोचकर हिन्दू कोड बिल बनाकर एक पुरूष एक स्त्री तक की सीमा निर्धारित कर दी। अब कुछ अनुपात बदला है और महिलाओ को समाज मे कुछ मांग बद रही है तो आप अब कन्या भ्रूण हत्या के विरूद्ध परेशान हो रहे है।

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि पति पत्नी के बीच शारीरिक संबंधो मे हमेशा पति ही आक्रमक क्यो होता है? क्यो नही दोनो के बीच समान संबंध हो। मुझे उसके प्रश्न पर बहुत आश्चर्य हुआ। पति और पत्नी के बीच कौन आक्रमक हो कौन सुरक्षात्मक इसकी चिन्ता उन्हे ही क्यों न करने दे। पुरूष और महिला की शारीरिक बनावट ही ऐसी है कि ऐसे व्यक्तिगत सम्बन्धो मे पुरूष का आक्रमक होना प्राकृतिक आवश्यकता है। यदि पुरूष ही न भावना से ग्रसित हो जावे तो सारी व्यवस्था ही चौपट हो जायेगी। यदि किसी कारण वश ऐसा हुआ तो पुरूष का मानसिक इलाज कराना पडता है । यही कारण है कि समाज मे विवाह के पूर्व ही पुरूष और स्त्री की क्षमता का आकलन करते समय लडके को लडकी से अधिक योग्य और सक्षम चुनने की प्रथा है । यदि लडका लडकी की अपेक्षा कम योग्य हो और कोई अन्य कारण न हो तो विवाह बेमेल मान लिया जाता है।

आज सबसे पहले यह समझने की जरूरत है कि परिवार के पारिवारिक मामलो मे समाज का हस्तक्षेप करने की सीमा क्या हो और समाज के सामाजिक मामलो मे कानून के हस्तक्षेप की सीमा क्या हो? जब कोई परिवार इन दोनो सीमाओ को तोडता है तभी कानून को हस्तक्षेप करना चाहिये। वर्तमान स्थिति तो यह है कि कानून निर्माता न परिवार की सीमाओ को समझ रहे है न समाज की। इनकी स्वय की क्षमता और चरित्र भी परिवारो और समाज के औसत चरित्र की अपेक्षा कमजोर ही है । ऐसे एक गिरोह ने अपने मनमाफिक एक किताब लिखकर उसे संविधान कह दिया और उस संविधान के आधार पर परिवार और समाज व्यवस्था के उपर स्वय को स्थापित कर लिया। ये लोग जब चाहें तब उस किताब मे महिलाओ को शोषित लिख दे और जब चाहे तब हटा दे। ये लोग जब चाहे तब उस किताब मे उक्त नकली समस्या का समाधान लिखकर हम पर थोप दे और जब चाहे तब उक्त समाधान को ही धातक लिखना शुरू कर दें। ये दो गुटो मे बंटकर नाटक करते रहते है और समाज नाटक को ही टकराव समझ कर देखने मे व्यस्त हो जाता है। अब यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि परिवार व्यवस्था के टूटने का मुख्य कारण भी वह किताब ही है जो स्त्री और पुरूष को दो वर्गो मे खडा करके राजनेताओ का स्वार्थ पूरा करना चाहती है।

हर राजनेता सामाजिक एकता से डरता है। वह समाज को धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता,उम्र, लिग , आर्थिक असमानता तथा उत्पादक उपभोक्ता के आठ आधारो पर बांटकर वर्ग निर्माण , वर्ग विद्वेष, वर्गसंधर्ष के प्रयत्न करता रहता है। इनमे से भाषा क्षेत्रियता उम्र और उत्पादक उपभोक्ता वर्ग संधर्ष क लिये स्थायी आधार न होकर तात्कालिक आधार ही बन पाते है। ये सभी मुदे कुछ समय तक ही काम करते है लम्बे समय तक टिकते नही। धर्म जाति के मुदे स्थायी तो है किन्तु स्पष्ट ध्रुवी करण नही कर पाते। आर्थिक विषमता का मुदा सफल नही हो पा रहा। ऐसी स्थिति मे महिला पुरूष का वर्ग भेद ही सर्वाधिक स्पष्ट और दीर्धकालिक वर्ग संधर्ष की दिशा मे सफल हो

सकता है। यह मुदा लम्बे समय तक समाज मे ध्रुवीकरण करने की क्षमता रखता है। इसलिये सभी राजनैतिक दल पूरी इमानदारी से इस कोशिश मे सकिय है कि महिला और पुरूष को दो समूहो मे बांटकर इनमे वर्ग संघर्ष की स्थिति बनाना ही उनके लिये सबसे अच्छा मार्ग है। हम सतर्क रहकर विचार करे और उनसे अलग रहकर सोचें।

## (घ) सत्यदेव गुप्त सत्य रूदौली बाराबंकी, उत्तर प्रदेश

**प्रश्न**— ज्ञान तत्व अंक एक सौ इकहत्तर पढा। मन में प्रश्न उठा कि आर. एस. एस. आर्य समाज अराजनैतिक संस्थाए है परन्तु इन सब के साथ ही किसी अन्य अराजनैतिक संस्था का नाम बताइये जिससे समस्त हिन्दू समाज का निर्विवादित संबंध और जुडाव हो , गैर हिन्दुओ का तो इस संस्था से जुडने का प्रश्न ही नही उठता है । एक दौ शो मैन की बात अलग है। इस विषय मे तो मुसलिमो में कोई भ्रम रहा ही नही है। उनके यहॉ तो प्रत्येक क्षेत्र मे एक नेता एक पथ है, एक किताब और एक रसूल के उपरांत सारी दुनिया की सारी मान्यताए , सारे ज्ञान जो उन की तराजू मे नही तुल पाते है, बेकार है त्याज्य है

अभी अभी गत सप्ताह पेशावर की साढें तीन शताब्धियो से सूफी सम्प्रदाय की मस्जिद जिसमें अभी तक मजहबी गति विधियॉ होती रहती थी उस रहमान बाबा की मस्जिद को पवित्र कुरान और एक मात्र अल्लाह के मानने वालो ने विस्फोट करके ध्वस्त कर दिया। अयोध्या के विवादित ढाचे मे तो एक अरसा से मजहबी गतिविधियॉ बद भी रही परंतु रहमान बाबा की मस्जिद मे तो मजहबी कार्य अभी जारी थे। बाबरी विध्वंस के बाद तो गैर मुस्लिम सेकुलरिस्टो समेत विश्व के सभी मुस्लिमो ने तीखी प्रतिकिया व्यक्त की थी किन्तु आज मौन है । इस दृष्टि से 171 अंक मे संघ पर जितने लांछन लगाये गए है वे पूर्वाग्रही है तथा श्री ओम पाल जी मेरठ के एक भी प्रश्न का यथोचित उत्तर नही है। हिन्दू तो संघ ही क्या ?कही भी किसी भी स्थल पर एक मत नही रहा है। यह बात जयचंद से लेकर आज तक सटीक है।

आपका
सत्यदेव गुप्त ' सत्य '
नयागंज, रूदौली, फैजाबाद

**उत्तर**— आपने इस्लाम को ठीक से समझा नही। आपने जैसा समझा उसकी अपेक्षा उसकी मान्यताऍ कई गुना अधिक खतरनाक है। यदि उनका बस चले तो वे सभी गैर मुसलमानो का या तो मुसलमान बना लें या समुद्र मे डुबा दें। उसकी शक्ति भी आपकी कल्पना से कई गुना ज्यादा है। यदि ऐसे खतरनाक विचार के विरूद्ध दुनिया के सभी गैर मुस्लिम लोग एक जुट हो तो इसमें बाधक संघ है या मैं ? संघ हिन्दू धर्म का प्रचार करे किन्तु इस्लाम से संघर्ष के मुददे पर बनने वाले विश्व जनमत मे बाधक न बने । हिन्दुओं के वोट लेने के उदेश्य से चौधराहट दिखाना हमारा उदेश्य नही है।

यदि इससे भी आगे बढकर हम न इस्लाम का विरोध करें न मुसलमानो का। हम सिर्फ आतंकवाद का विरोध करें और पूरे विश्व जनमत को एकजुट होने दे ंतो इसमें संघ सहमत क्यो नही । आतंकवादी चाहें हिन्दू हो या मुसलमान , वह इसाई हो या साम्यवादी सबके विरूध एक विश्व स्तरीय साझा रणनीति बनाने में संघ को सहयोग करना चाहिये। अभी अभी वरूण गांधी ने जो कहा वह कार्य यदि वे वास्तव में कर दे ंतब आतंकवाद माना जाय या नही। यदि वरूण गांधी यह कहें कि मै चुनाव जीत गया तो सारे मुसलमानो को फांसी देने का कानून बनाने की मांग करूंगा तो यह कथन उस कथन से भिन्न है जो उन्होने कहा। मै न वरूण ने कहा उसका समर्थक हूँ न मैने वरूण के कथन का संशोधन किया उसका। मैं तो पक्षधर हूँ आतंकवाद के विरूध कठोरतम सफल कार्यवाही का। मै तो समर्थक हूँ आतंकवादियो को खुलेआम चौक पर फांसी देने के कानूनी प्रावधान का । जब अपने मन माफिक कानून बनाने का हमें पूरा पूरा अधिकार है तो कानून बदलने की आवाज न उठाकर कानून हाथ में लेने की आवाज उठाना आतंकवाद नियंत्रण मे बाधक है जो गलती संघ भी कर रहा है और वरूण भी। मुस्लिम तुष्टीकरण के विरूध कांग्रेस को सहमत करना कठिन नही। यदि कांग्रेस तुष्टीकरण न छोडे तो उसकी जगह तुष्टीकरण विरोधी या आतंकवाद विरोधी सरकार भी गन सकती है किन्तु चाहे आतंकवाद रहे या नही किन्तु प्रधान मंत्री तो भाजपा का ही होगा यह संभव नही। यह भी संभव नही कि भारत हिन्दू राष्ट्र ही बने।

आपने लिखा कि ईस्लाम एक नेता , एक पथ , एक किताब , एक रसूल हेतु मजबूर करता है। मै यह जानना चाहता हूँ कि क्या हिन्दुओं को भी उसी रास्ते चलने हेतु प्रेरित करना उचित होगा? यदि नही तो आप क्यो एक भाषा एक देश के लिये संघर्ष रत है? क्यो आप राष्ट्र को समाज से बडा सिद्ध करते रहते है। ? परिवार को पहली इकाई मानकर उसे राष्ट से भी अधिक शक्ति सम्पन्न बना दिया जावे तो संघ सहमत क्यो नही? संघ वालो से पूछकर बताइये कि वे परिवार गांव जिले को अधिकतम अधिकार सौपकर केन्द्र सरकार को सुरक्षा और न्याय तक सीमित करने के पक्ष मे है या विपक्ष मे? अब ढुलमुल काम नही चलेगा।

मैने अपनी राय आपको बताई है। मेरे विचार मे यही एक मात्र मार्ग है कि सुरक्षा और न्याय के लिये विश्व एकता मजबूत की जावे तथा अन्य सभी दायित्व परिवार, गांव, जिला, प्रदेश में बांट दिये जावें। आतंकवाद के विरूध विश्व जनमत को इक्ठ्ठा किया जावे तथा इस कार्य में बढ चढ कर भाग लेने वाला संगठन स्वय सत्ता संघर्ष से बाहर हो। यदि इतनी शर्ते मंजूर हो तो संघ के साथ बैठकर योजना बननी चाहिये । यदि संघ के दिमाग मे इससे कोई भिन्न योजना हो तो स्पष्ट करे। हिन्दू ही नही , गैर हिन्दुओं को भी सहमत करने मे मेरा पूरा सहयोग रहेगा।

## (च) श्री बाल कृष्ण पिल्लै, गीताभवन, पेरूरकटा, तिरूअनन्तपुरम 695005

ज्ञान तत्व एक सौ अरसठ मिला। पचीस लाख रूपये की अपनी रखी हुई पूँजी ट्रस्ट को सौंपकर स्वय या अपने परिवार के किसी सदस्य को ट्रस्ट की स्थायी समिति मे न रखने का आपका निर्णय विलक्षण आदर्श प्रस्तुत करता है मानव समाज आपके इस त्याग पर गर्व करेगा।

आपने भविष्य की योजना मे तीन टीमों का जो कार्य विभाजन किया है वह बहुत ही व्यावहारिक लगता है। इतना गंभीर किन्तु मौलिक कार्य विभाजन एक बहुत कठिन कार्य है जो आपने किया है। मै मानसिक व्यायाम टीम से जुडना चाहता हूँ। क्या प्रकिया होगी यह लिखने की कृपा करें

**उत्तर**— मैने जो किया वह कोई विलक्षण कार्य न होकर स्वाभाविक कार्य मात्र है।मुझे कई वर्ष पूर्व से ही महसूस होता था कि गांधी जी की एक भूल के कारण भारत की सामाजिक व्यवस्था लम्बी गुलामी मे समा गई। अभी भी यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता कि यह गुलामी और कितनी लम्बी चलेगी। जब गांधी जी के धोषित वारिस ही गांधी जी के सेवाग्रम आश्रम मे बैठकर गुलामी के विरूध संघर्ष के खिलाफ फतवा जारी करने लगे हो तब इस गुलामी की अवधि का क्या आकलन कर? इसलिये समयवहद निर्णायक तथा अल्प कालिक योजना को दीर्घकालिक मे बदलना आवश्यक समझा गया।

यदि सारा संघर्ष मेरे नेतृत्व मे शुरू होता तो संभव है कि संघर्ष को दस पांच प्रतिशत अधिक गति मिलती किन्तु वैसी स्थिति मे मेरे हटते ही लाभ की अपेक्षा कई गुना अधिक नुकसान का खतरा स्पष्ट दिख रहा था। गांधी जी के जाने का उदाहरण हमारे सामने है। इसलिये उचित यही था कि एक अच्छी समझदार संघर्ष शील टीम को आगे लाकर स्वय किनारे हो जाया जाये। मैने तो सिर्फ इतना ही किया है। सत्ता और सम्पत्ति से स्वय को मुक्त करके ठीक लाइन की है। ट्रस्ट मे स्वय को या परिवार के लोगो को शामिल करना धातक होता क्योकि ट्रस्ट का उदेश्य सेवा कार्य न होकर समाज सशक्तिकरण राज्य कमजोरीकरण तक सीमित है । मेरे परिवार के लोग अलग से एक लाख रूपया शामिल करके साधारण सदस्य बन सकते है

आपने मानसिक व्यायाम का विवरण जानना चाहा है। बहुत शीध्र ही वह विधि आपके समक्ष आ जावेगी मै आपको खबर करूगा।

## (छ) श्री कुन्दन लाल कुशवाहा, खलीलपुर , बदायूँ, उत्तर प्रदेश

ज्ञान तत्व 170 मिला पढते पढते इच्छान होते भी पत्र लिखने का विचार सबल हुआ क्योकि राष्ट्र भक्ति का उफान रूक नही पाया। मैने आपको पिछले पत्र मे महाकाल भगवान के पांच वीर भद्रों मै से एक बता कर आपके व्यक्तित्व की पहचान करायी थी वह आपको शायद अच्छी नही लगी। अब मै आपकी गिनती आधुनिक महानायक चाणक्य या समर्थ गुरू रामदास जी से कर रहा हूँ जिन्होने साधारण से नागरिको का आगे कर राजनीति का नकशा पलट दिया। यह सब कुछ आपको अवसर की पहचान का संकेत करने के लिये लिख रहा हूँ। प्रेरणा उसी की शक्ति की है जो युग परिवर्तन का सरजाल जुटा रही है

संयोग की बात है कि अभी अभी एक नया महानंद सम्राट अशोक महान के पदचिन्हो पर पंचशीलो मे मचाहित तैयार हुआ है जिसने अच्छा लक्ष्य सत्ता संग व्यवस्था परिवर्तन स्वच्छ पारदर्शी राजनीति वेदाग प्रत्याशी रखने का संकल्प किया है। यह बात मुझे 22.2.09 को फरूखाबाद की जन सभा मे मालूम हुई है। इस दल के राष्ट्रीय अध्यक्ष माननीय केशवप्रसाद जी मौर्य है । यदि उन्हे चाणक्य के समान संरक्षण एव मार्गदर्शन दे सके तो यह चन्द्रगुप्त मौर्य शासन रूप नन्दवैश (मृष राजनीति) को समाप्त करने मे काफी सहासक सिद्धि हो सकेगा तथा अपना अभियान भी राजनक्तिक चुनावी पंखों पर बैठ जन के दिल दिमाग मे उतर कर संधर्ष का रूप ले लेगा। मेरे विचार से इससे आपकी महत्वाकाक्षा को ठेस नही पहुँचेगी और सम्मानित पूजार्नाथ गुरू पदवी भी प्राप्त हो जायेगी। आशा है इस अल्पवुद्धि प्रार्थी की सलाह पर गहन विचार करेंगें।

**उत्तर**— आपने पूर्व पत्रो मे मेरी तुलना महाकाल के पांच बीर भद्रो मे एक बताकर की थी जो मुझे अच्छी नही लगी। अच्छा लगना भी नही चाहिये था क्योकि ऐसी तुलना अहंकार का आधार होती है । मेरी प्रशंसा मेरे समक्ष करना अच्छा भी हो सकता है और धातक भी। इसलिये ऐस प्रशंसा मुझे प्रोत्साहित करे तो उपयोगी है और अहंकार पैदा करे तो धातक। अपनी स्वाभाविक कमजोरी का आकलन करके मैने इसे ठीक नही माना।

इस बार आपने मुझे चाणक्य के समान उपयोगी समझा है। मेरे एक अच्छे सलाहकार तथा पचीस दिसम्बर को धोषित ट्रस्ट के महत्वपूर्ण सदस्य बम्हचारी राजसिह जी आर्य ने छ माह पूर्व मुझे चाणक्य सीरियल देखने की सलाह दी थी । मैने केसेट खरीदकर चौवालीस दिनो मे देखा। मैने चाणक्य के सम्बन्ध मे दो भूमिकाओ पर विचार किया

1.सिकन्दर के भारत मे साम्राज्य विस्तार के विरूध राष्ट्रवादी शक्तियो का एकत्रीकरण तथा 2. नंद वंश का समूल नाश। पहली भूमिका की परिस्थितियॉ ऐसी थी कि सिकन्दर को एक विदेशी आक्रमण कारी न समझकर सभी भारतीय राजा अपने अपने क्षेत्रीय लाभ हानि के आधारपर नीति निर्धारण करते थे । इसका परिणाम था कि सिकन्दर लगातार सफल होता जा रहा था। चाणक्य ने ऐसे राजाओ मे राष्ट्र भाव भरा और उन्हे एक जुट होकर संघर्ष की प्रेरणा दी। जो राजा नही माना उसके विरूध क्षात्रो तथा शिक्षको के नेतृत्व मे विद्रोह भी खडा करवाया। चाणक्य ने प्रमाणित किया कि शिक्षक सर्वोच्च होता है । वह सामान्यकाल मे तो समाज का मार्ग दर्शन मात्र ही करता है किन्तु आपात्काल मे स्वय अपने प्राण खतरे मे डालकर भी संघर्ष मे आगे आता है। शिक्षक कभी कायर नही होता न ही सरकार का गुलाम होता हैं जिस तरीके से चाणक्य ने सिकन्दर के विरूध योजना बनाई वह बहुत आदर्श मानी जा सकती है।

चाणक्य की दूसरी भूमिका है नन्द वंश के विरूध। चाणक्य के पिता उक्त राज्य मे एक आचार्य थे। उस राज्य मे लकडी पर राजा टैक्स लेता था। जिसके विरूध चाणक्य के पिता ने राजा के विरूध विद्रोह किया। राजा ने उक्त आचार्य पर अत्याचार किये। प्रतिकिया स्वरूप चाणक्य ने उक्त राजा को समूल नष्ट करने की प्रतिज्ञा कर ली। चाणक्य ने इस कार्य मे सारी सीमाए तोडकर काम किया । पूरा सीरियल देखने के बाद चाणक्य के प्रति मेरे मन मे कोई अच्छी तस्बीर नही बन पाई। सम्पूर्ण घटनाकम किसी अत्याचारी राजा के अत्याचारो से त्रस्त प्रजा की मुक्ति का संघर्ष न दिखकर चाणक्य पर अपने पिता के विरूध हुए अत्याचार के विरूध प्रतिकिया अधिक दिखी। राजा महानन्द वैसा अत्याचारी नही दिखा जिसके विरूध इतना गंभीर युद्ध उचित था। युद्ध मे विजय चाणक्य की हुई । सभी राजा बिना प्रत्यक्ष युद्ध के ही चाणक्य की कूटनीति के कारण आपस मे ही कट मरे। उनकी इस भूमिका का मेरे मन पर कोई आदर्श प्रभाव नही पडा।

आचार्य समाज का एक उच्च सम्मान प्राप्त पद है। उसे व्यक्ति परिवार गांव या राष्ट्र के आन्तरिक मामलो मे कभी हस्तक्षेप नहीकरना चाहिये। आचार्य का कर्तव्य है कि वह इनकी आन्तरिक व्यवस्था को अप्रत्यक्ष मार्गदर्शन तक ही स्वय को सीमित रखे। यदि कोई परिवार गलती भी करे तो आचार्य को प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से बचना चाहिये और गांव या राज्य के भरोसे छोड देना चाहियें किन्तु कभी बिल्कुल ही असाधारण स्थिति आ जावे तथा कोई एक इकाई अनियंत्रित भी हो जावे और गलत भी करने लगे तब आचार्य को प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करना चाहिये। किन्तु ऐसे किसी हस्तक्षेप मे भी कुटनीति या कपट का आश्रय तब तक नही लेना चाहिये जब तक बिल्कूल ही आपात्कालीन स्थिति न आ जावे। जब कोई राजा अधिकतम शक्ति सम्पन्न भी हो जावे तथा अधिकतम उच्श्रृखल भी तभी आचार्य को कूटनीति या छल कपट का सहारा लेना चाहिये। सिकंदर से युद्ध मे यदि चाणक्य ने कूटनीति का आश्रय लिया तो वह देश काल परिसिथिति के अनुसार एक आवश्यक और उचित कदम था विदेशी शक्तियॉ द्वारा देश और समाज को गुलाम बनाने का खतरा था । कोई अन्य समाधान दिख ही नही रहा था। सिकन्दर किन्ही सामाजिक नियमो कानूनो का पालन भी नही कर रहा था। वैसी स्थिति सिकन्दर के विरूध एक मजबूत राजनैतिक शक्ति खडी करके कूटनीति या छल कपट का सहारा लेना उचित था। किन्तु नंद के मामले मे ऐसा नही कहा जा सकता। नन्द से संघर्ष सिकन्दर से संघर्ष से भिन्न स्वरूप का होने से उसमे इस सीमा तक कूटनीति या छल कपट का मार्ग अपनाना किसी आचार्य के लिये आदर्श स्थिति नही माननी चाहिये। मेरा व्यक्तिगत मत तो ऐसा ही है कि चाणक्य को राजनैतिक संघर्ष मे नही कूदना चाहिये था।

चाणक्य की भूमिका सिकन्दर के साथ समाप्त हुई वर्तमान सामाजिक राष्ट्रीय संदर्भ मे हमारी भूमिका क्या हो क्या चाणक्य और चद्रगुप्त की भूमिका की परिस्थितियॉ उपस्थित हो चुकि है कि कोई आचार्य अब विशेष स्थिति धोषित करके समाज को संगठित करे तथा क्या ऐसीही परिस्थियॉ बन चुकी है कि कोई आचार्य आपात्काल धोषित करके कूटनीति या छल कपट का मार्ग अपना लें। मैने गंभीरता से विचार किया। भारत की यदि समीक्षा करें तो भारत मे अभी न तो कोई विदेशी आकमण हुआ है न ही ऐसा कुछ दिखता है। भारत की आन्तरिक व्यवस्था की सरकार चल रही है। किसी व्यक्ति या परिवार की तानाशाही नही। ऐसी राजनैतिक स्थिति मे आज भारत की आन्तरिक व्यवस्था मे किसके विरूध चंद्रगुप्त की जरूरत है? यदि लोकतंत्र को लोकस्वराज्य मे बदलना उदेश्य है तो वह कार्य नंद वंश और चन्द्रगुप्त के बीच न होकर सामूहिक प्रयत्नो से ही संभव होगा जो काम मै कर रहा हूॅ। चाणक्य की भूमिका का अर्थ है कूटनीति का सहारा। जब शत्रु ही स्पष्ट नही है तथा कूटनीति के अतिरिक्त अन्य मार्ग भी उपलब्ध है तो चाणक्य की भूमिका उचित नही। मेरे विचार मे तो चाणक्य की भूमिका बिल्कुल अन्तिम स्थिति मे ही अपनानी चाहिये जिसकी अभी आवश्यकता नही दिखती। सामान्य भूमिका मे व्यवस्था परिवर्तन का कार्य चल ही रहा है। यदि यह कार्य बढा लिया जावे तो पर्याप्त है।

अर्न्तराष्ट्रीय स्थिति का आकलन करे तो विश्व मे इस्लामी आतंकवाद का साम्यवाद के साथ गठजोड खतरनाक गति से बढ रहा है। उसके लिये विश्व समुदाय एक साझा रणनीति के प्रयत्न मे है। इस कार्य मे मेरी क्षमता चाणक्य के समान नही है कि मै कोई निर्णायक पहल कर सकूॅ । विश्व मानवता के विरूध उत्पन्न कटटरवादी इस्लामिक साम्यवादी गठजोड के विरूध भारत भी एकजुटता दिखाये और उस एकजुटता मे मै चाणक्य के समान संघ परिवार सर्वोदय जैसी संस्थाओ को आन्तरिक कटुता को बाधक बनने से रोक सकूॅ इतना ही मेरे लिये संभव है। वह काम मै कर भी रहा हूॅ। मुझे गालियॉ देने वाले सर्वोदय मे भी बहुत मिलेंगें और संघ परिवार मे भी। अन्य छोटे छोटे समूह भी छिट फुट विरोध करते ही रहते है किन्तु आप देख ही रहे है कि सबकी गालियॉ सुनने के बाद भी मै इन धर्म या राष्ट्रवाद के नाम पर बेमतलब लडने वालो को व्यापक मानवीय संदर्भ मे आतंकवाद के विरूध एक जुट होने हेतु प्रेरित कर रहा हूॅ।

भारत के आन्तरिक मामलो मे भी संघर्षरत इन समूहो को लोक स्वराज्य के नाम पर एकजुटता मे सफलता मिल ही रही है। यदि बिना एक चद्रगुप्त तैयार किये तथा बिना कूटनीति या धूर्तता का सहारा लिये हमारा उदेश्य पूरा होने की संभावना है तो चाणक्य की भूमिका की आज मै आवश्यकता या औचित्य नही समझता । विषय गंभीर है तथा मेरा विचार निष्कर्ष स्वरूप मे न होकर विचारर्थ ही है । इसलिये इस विषय पर आप सब भी लिखे ।

## (ज) श्री ईश्वर दयाल जी, मुजफ्फरपुर, राजगीर, नालन्दा, बिहार 803116

ज्ञानतत्व एक सौ इकहत्तर मिला। आपने तीन टिप्पणियॉ की है जिन्हे और स्पष्ट होना चाहिये

1. गांव, जिला, प्रदेश और राष्ट्र व्यवस्था की आन्तरिक इकाइयॉ है जबकि परिवार स्वतंत्र इकाई।
2. धर्म की दो पहचान है 1. गुणप्रधान आचरण 2. संगठन प्रधान या पहचान प्रधान आचरण। यदि ये दोनो धर्म है तो फिर सम्प्रदाय क्या है? यदि संगठन प्रधान या पहचान प्रधान आचरण कर्ताओ के समूह को धर्म कहना

बन्द करके सम्प्रदाय कहना शुरू कर दे तो क्या पूरी समस्या समाप्त नही हो जायगी क्या इससे साम्प्रदायिक शक्तियो द्वारा धर्म शब्द का दुरूप्रयोग करने से रोकने मे सुविधा नही होगी?

3. आपने लिखा है कि आध्यात्म व्यक्ति का निष्क्रिय तथा अव्यावहारिक बनाता है। सच्चाई यह है कि आध्यात्म व्यक्ति को अति सक्रिय, अत्याधिक व्यावहारिक बनाता है। बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, दयानन्द, विवेकानन्द, अरविन्द आदि आध्यामित्मक होते हुए भी न निष्क्रिय थे न अव्यावहारिक।

**उत्तर**— 1. पश्चिम दो मूल इकाइयॉ मानता है 1. व्यक्ति 2. समाज। भारत मानता है कि व्यक्ति और समाज के बीच परिवार भी एक स्वतंत्र इकाई के रूप मे होना चाहिये। मुझे भी लगता है कि समाज व्यवस्था की मूल इकाई परिवार का होना अधिक सुविधा जनक भी होगा और व्यावहारिक भी। इस त्रिस्तरीय व्यवस्था की सूक्ष्म विवेचना के लिये अभी और मंथन करना होगा। कभी भविष्य मे इस पर और चर्चा कर सकते है।

2. धर्म और साम्प्रदाय की पृथक पृथक अभिव्यक्ति हो यह बहुत अच्छी बात है किन्तु जब तक ऐसा न हो तब तक क्या करें वर्तमान समय मे धर्म शब्द समाज मे दोनो अर्थो मे व्यापक प्रचलन मे है। जब तक समाज का बहुमत धर्म और सम्प्रदाय को अलग अलग नहीकरता तब तक धर्म शब्द का प्रयोग करना हमारी मजबूरी है। धर्म निरपेक्षता शब्द का वास्तविक अर्थ तो भ्रमक है ही किन्तु भारत के निन्यान्नवे प्रतिशत लोग धर्म निरपेक्षता काअर्थ सम्प्रदायनिरपेक्षता ही समझते है।

हरिजन शब्द का रूढ अर्थ अलग है और वास्तविक अलग। अनुसूचित जाति कहने की अपेक्षा हरिजन कहना आमलोग आसानी से समझ रहे है यघपि इस शब्द का प्रयोग धातक है ऐसे भ्रमक शब्दों का प्रचलन बन्द होन की योजना बननी चाहिये।

धर्म निरपेक्ता को साम्प्रदाय निरपेक्ष लिखने मे एक और कठिनाई आ सकती है कि हिन्दू समुदाय को धर्म कहे या सम्प्रदाय। यदि हम धर्म निर्पेक्षता के स्थान पर सम्प्रदाय निरपेक्षता लिखें तो हिन्दू वादी संगठन स्वय को सम्प्रदाय की परिभाषा से बाहर करके इसका दुरूप्रयोग करना शुरू कर देगें। इसलिये शब्द के भ्रमक अर्थ को बदलने मे हम अपनी शक्ति नही लगा रहे।

3. आपने जिन महापुरूषो के नाम गिनाये है वे धर्म प्रधान थे या समाज प्रधान या आघ्यात्म प्रधान यह निश्चित नही। मै इन सबको आध्यात्मिक नही समझता क्योकि इन सबने व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित होने की सीख न देकर समाज व्यवस्था मे जाने की प्रेरणा दी है। आध्यात्मिक प्रधानता वाले तो समाज और परिवार का नश्वर मानकर आत्मा परमात्मा तक सिकुडते रहते है। वर्तमान मे भी कई लोग आत्म उत्थान की दिशा मे लगातार प्रेरित करते रहते है । मेरा व्यक्तिगत अनुभव यही है कि यदि आध्यात्म धर्म और समाज की अलग अलग व्याख्या करे तो मैने आघ्यात्क की जो व्याख्या की है वही ठीक है क्योकि धर्म और समाज व्यक्ति को आध्यात्म की अपेक्षा अधिक सक्रिय और व्यावहारिक बनाते है ।